Peer Reviewed Journal

ISSN 2319-8648

Impact Factor (SJIF)

Impact Factor - 7.139

Current Global Reviewer

International Peer Reviewed Refereed Research Journal Registered & Recognized
Higher Education For All Subjects & All Languages

Special Issue 20 Vol. II
on

भारतीय समाज और विकलांग (दिव्यांग) विमर्श

Indian Society & Ideology of Disability

October 2019

Associate Editor
Dr. Shivaji Wadchkar

Guest Editor
Principal Dr. V.D. Satpute

Assistant Editor
Dr. V.B. Kulkarni
Dr. A.K. Jadhav
Dr. S.A. Tengse

www.publishjournal.co.in

निशि उपाध्याय

36. भारतीय समाज और विकलांग विमर्श के संदर्भ में प्रस्तुत शोधालेख 'विकलांगता और मनोविज्ञान' के उपलक्ष्य में नाटक 'बिन बाती के दिप' 145
प्रा.डॉ.संजय व्यंकटराव जोशी

37. विकलांग विमर्श 148
प्रा.खाडे विद्या बाबूराव

38. विकलांग विमर्श स्वरूप एवं अवधारणा 151
डॉ.शेख शहेनाज अहेमद

39. विकलांग विमर्श : 'महादेवी वर्मा की कहानियाँ अलोपी और गुंगिया' 154
प्रा. डॉ. शे. रज़िया शहेनाज़ शे. अब्दुला

40. विकलांग विमर्श और हिंदी साहित्य 159
वाघमारे विकास सुर्यकांत

41. सोशल मीडिया रिपोर्टिंग का सवाल 162
डॉ. वडचकर एस.ए.

42. 'आपका बंटी' उपन्यास में मनोवैज्ञानिक चिन्तन 165
डॉ. सुधीर गणेशराव वाघ

43. 'कुर्सी पहियोंवाली' में विकलांग की समस्याएँ : एक चिंतन 168
डॉ. सतीश वाघमारे

44. भारतीय सहित्य और समाज में विकलांग विमर्श 171
प्रा.डॉ.येल्लूरे एम.ए.

45. विकलांगता और कथासाहित्य 176
देशमुख शहेनाज अ. रफिक

46. विकलांग विमर्श को स्वर देता हिंदी काव्य विश्व 180
डॉ. श्वेता चौधारे

47. ममकालीन हिन्दी कहानियों में विकलांग विमर्श 186
डॉ.निम्मी ए.ए

48. हिंदी कहानी साहित्य में विकलांग चरित्र 190
डॉ.कांचनमाला बाहेती

49. विकलांगता एक परिचय 193
प्रा. डॉ. अभिमन्यु नरसिंगराव पाटिल

CURRENT GLOBAL REVIEWER

Special Issue XX , Vol. II	Peer Reviewed	ISSN : 2319 - 8648
Octomber 2019	SJIF	Impact Factor : 7.139

विकलांग विमर्श को स्वर देता हिंदी काव्य विश्व

डॉ. श्वेता चौधारे

हिंदी विभागाध्यक्ष, कला, वाणिज्य एवं विज्ञान महाविद्यालय, सोनई, तहसिल - नेवासा, अहमदनगर

बीज शब्द -

विकलांगता, हिंदी काव्य, दिव्यांग, छायावाद, भारतीय संविधान, हाशिए का समाज

सारांश -

विकलांगता का प्रभाव विकलांगजनों से अधिक अन्य सामाजिक मानस पर प्रभाव डालता है। ऐसे में विकलांगों के लिए स्वस्थ सामाजिक वातावरण निर्माण करना अत्यावश्यक बन जाता है। इस वातावरण एवं तदनुकूल व्यवस्था निर्मिती के लिए साहित्य अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभा रहा है। विकलांगों की पीडाएं, उनके सुप्त सामर्थ्य तथा जीवन के सभी स्तरों पर समान विकास के अवसर एवं उनके अधिकारों की रक्षा में हिंदी साहित्य एवं काव्य जगत कार्यरत है।

वास्तव में विकलांगों को शारीरिक-मानसिक रूप से कमजोर मान कर उन्हें अन्य सुदृढ लोगों की तुलना में सभी क्षेत्रों में अशक्त ही समझा जाता है। उनके योगदान को समाज निर्माण, राष्ट्र निर्माण में दुर्लक्षित किया जाता है। इसी पूर्वग्रह के कारण विकलांगों की प्रगति के लिए नीतियों का निर्धारण, शिक्षण-प्रशिक्षण एवं रोजगार के अवसरों की उपलब्धता आदि के प्रति भी उपेक्षा भाव देखा जा सकता है।

जिस तरह से साहित्य में माध्यम से स्त्री विमर्श, दलित विमर्श जैसे विषयों पर मंथन हो रहा है, अपेक्षा है साहित्य के द्वारा फिर एक बार विकलांग विमर्श जैसे विषय को न्याय मिलेंगा। शब्दों में समाज बदलने की ताकद होती है, शब्दों से प्राप्त दृढता कविता को सशक्त बनाती है। वर्तमान अनेक विमर्शों को कविता स्वर दे रही है। विकलांग विमर्श को भी स्वर देने का काम कविता कर रही है। समाज, शासन और विश्व विकलांगों की समस्याओं को समझने में उत्सुकता दर्शाएगा। उनकी समस्याओं पर चर्चा होंगी, समाधान प्रस्तुत होंगे। विकलांगों को राष्ट्र उन्नती के प्रवाह में सम्मिलित करना जरूरी है। विकलांग समाज के लिए बोझ नहीं। समाज के विकास में योगदान देने के लिए वे सबल है। बशर्ते उनकी योग्यता को अवसर मिले।

मूल आलेख -

सामाजिक घटनाओं को समर्थता एवं सशक्तता के साथ प्रतिबिंबित करने की क्षमता अन्य विधाओं की तुलना में साहित्य में अधिक होती है, इसी कारण वह समाज का दर्पण कहलाने का अधिकारी है। साहित्य मात्र भाव-भावनाओं का अंकन नहीं करता, वह समाज के वर्ग प्रतिनिधीयों को पात्र रूप में उभारता है, जो कभी प्रशंसा के तो, कभी उपेक्षा के धनी बन जाते है। मात्र वर्ग प्रतिनिधित्व के लिए समाज और साहित्यकार भी अक्सर पूर्ण व्यक्तित्व को प्रधानता देता है, खंडित-श्लथ-गात्र व्यक्तित्व को नहीं। जिसके कारण सामाजिक रूप से दुर्लक्षित अंग-भंगवाले पात्र, विकलांग साहित्य के हाशिए पर ही पाए गए। जबकि गौर से देखा जाए तो साहित्य, समाज, राजनीति, विज्ञान, धार्मिक तथा नाना क्षेत्रों में विकलांग व्यक्तियों का योगदान अविस्मरणीय है। संभवतः सामाजिक स्तर पर ख्याति प्राप्त विकलांगजनों की विकलांगता का स्मरण नहीं किया जाता। जिसके चलते अन्य विकलांगों के पक्ष में उपेक्षा भाव ही अधिक आता है। किंतु यह भी बड़ी विचित्र स्थिति है,

विकलांग की विकलांगता का प्रभाव उस विकलांग व्यक्ति के तन-मन पर काफी कम, औरों के मन पर अधिक छा जाता है। जिसके कारण वर्तमान में विकलांगता का स्वरूप शारीरिक कम और मानसिक रूप से अधिक प्रभाशाली होता दिखाई देता है।

भारतीय समाज में विकलांगता की स्थिति को शारीरिक-मानसिक कमजोरी के अंतर्गत आंका जाता है। अतः उनके प्रति अति भावुकता का प्रदर्शन करणे की कोशिश में उनके लिये 'लाचार', 'बेचारे' जैसे शब्दों का प्रयोग अक्सर होते हुए नजर आता है। बड़ी दुर्भाग्य की बात है कि विकलांगों के लिए सहदयता के स्थान पर व्यंग्यात्मकता का भाव समाज में अधिक पनपता दिखाई दे रहा है, वही साहित्य की विभिन्न विधाएं इस दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास कर रही है। भारतीय साहित्य में विकलांग शब्द के पर्याय में प्रयुक्त शब्दों को लेकर डॉ. गोपाल शरण पांडेय कहते है - " प्राचीन भारतीय साहित्य में विकलांग, पोगंड व्यंग्य, विकृत, हिनांग, अधिकांग, विकल, विकलेन्द्रिय, अतिरिक्तग्रंथी, हिनगान्न, न्युनांग, न्युनाधिकांग, हिनाधिकांग, अंगहीन, व्यसन अंग, व्यासनिनं शब्दों की चर्चा आई है।"

वर्तमान में विकलांग के पर्याय में हिंदी में 'अपाहिज', 'अपंग', 'पंगु' तो अंग्रेजी में Handicapped, Physically- Mentally Disabled, Cripped जैसे शब्दों का प्रयोग हो रहा है। वहीं विज्ञान तथा विधि-विधान की भाषा में 'दृष्टिहीन', 'मूक-बधिर', 'गतिमंद', 'कर्णबधिर', 'अस्थि-व्यंग्य' जैसे कई शब्दों का प्रयोग सामान्य प्रचलन-सा हो रहा है। कर्मप्रधान भारतीय समाज में विकलांगता का संबंध उस व्यक्ति के वर्तमान वास्तव-अस्तित्व से अधिक उसके पिछले पाप-पुण्य, पूर्वकर्म की अवधारणा से जोडकर देखा जाता है। अतः इसे नियति मानकर, समाज द्वारा निर्धारित दायरे में विकलांग व्यक्तियों को जीवन जीने के लिए बाध्य किया जाता है, जहां उनकी अपनी पहचान नहीं होती। विकलांगता की मार झेलते हुए वे अभिशप्त जीवन जीने के लिए मजबूर हो जाते है। हिंदी साहित्य के छायावाद के आधार स्तंभ सुमित्रानंदन पंत की 1940 में प्रकाशित 'गांव की लडके' कविता का बरबस स्मरण होता है। कविता का विषय वैसे तो गांव के लडकों की स्थिति दर्शाना है। देश का भविष्य माने जाने वाले ये लडके किस तरह से विकलांग होकर जीने के लिए विवश है, इसका चित्रण निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है -

कोई खंडित, कोई कुंठित / कृश बाहु, पसलियां रेखांकित
टहनी-सी टांगे, बढ़ा पेट / टेढ़े-मेढ़े, विकलांग घृणित

रेंगनेवाले कीड़ों के समान पंगुता का जीवन जीनेवाले इन लडकों को देखकर भी अपने-आप को सभ्य कहनेवाला समाज उनकी व्याधि को दुर करने के लिए आगे नहीं आता। इस स्थिति को देखकर कवि के मन में क्षोभ उभरता है -

इन कीड़ों का भी मनुज बीज / यह सोच हदय उठता पसीज
मानव प्रति मानव की विरक्ति / उपजाती मन में क्षोभ खीज

विकलांगों के प्रति घृणित या दया भाव उन्हें जिंदगी के प्रति उत्साह, जीजिविषा, आत्मविश्वास से दूर ले जाती है। समाज विकलांगों के सर्वसामान्य जीवनक्रम को अस्वीकार कर उनके प्रति घृणित जिज्ञासा भाव अधिक रखता है।

1939 में ही प्रकाशित सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविता 'रानी और कानी' विकलांग विमर्श के अन्य एक ओर पहलू को सामने लाती है। कविता के नायिकत्व के रूप में निराला एक विकलांग को स्थान देते है। पर समाज उसका मूल्यांकन करते हुए उसके सामान्य चर्या पर ध्यान न देकर उसकी शारीरिक विकृती पर लक्ष केंद्रित करता है। विकलांगता का सामना करनेवाली स्त्री के लिए तो यह स्थिति दोहरे संकट की मार प्रतीत होती है। क्योंकि उसका पहला अपराध उसका स्त्री होना है,

CURRENT GLOBAL REVIEWER

Special Issue XX , Vol. II | Peer Reviewed | ISSN : 2319 - 8648
Octomber 2019 | SJIF | Impact Factor : 7.139

तो दूसरा जघन्य दोष उसका विकलांग होना माना जाता है। इस कविता की नायिका को उसकी मां ने बडे प्रेम, आदर से रानी नाम दिया था, पर उसका रूप रानी शब्द की गरिता के उल्टा था। चेचक के दाग, काली, नक-चिप्टी, गंजा सिर और एक आंख से कानी होकर भी रानी गृहकार्यों मे दक्ष है। सयानी होने पर रानी की मां उसकी शादी को लेकर चिंतित है। रानी की विकलांगता उसकी कार्यदक्षता को शून्य बना देती है। समाज उसके बाह्य वर्ण पर ध्यान देता है, अंर्तमन या कौशल्य का मूल्यांकन नही करता। इसी कारण रानी जैसा वर्ग सदैव तिरस्कार को झेलते हुए, सामाजिक प्रवाह से बाहर फेंका जाता है। यथा -

जब पडोस की कोई कहती है - / औरत की जात रानी,
ब्याह भला कैसा हो / कानी जो है वह !
सुनकर कानी का दिल हिल गया, / कांपे कुल अंग,
दाई आंख से / आंसू भी बह चले मां के दुख से,
लेकिन वह बाई आंख कानी / ज्यो-की-त्यों रह गई रखती निगरानी।

विकलांगों की स्थिति को देख कर बार-बार यह प्रश्न उभरता है, कि शिक्षा, तंत्रज्ञान के सहारे परिवर्तन की अगुवाई करनेवाने सभ्यता-संस्कृति प्रिय भारतीय समाज में, क्या विकलांग सदा से ही उपेक्षा के भागी बने रहे है ? तो उत्तर मिलता है -नही। रामायण-महाभारत जैसे महाकाव्यों में कई ऐसे पात्र है, जो विकलांग होते हुए भी अपनी प्रतिभा के बल पर आदर के पात्र बने। विश्व के प्राचीन ग्रंथ 'ऋवेद' में भी इस दिशा में स्पष्ट निर्देश मिलते है। ऋवेद में कहा गया है -

याभि शचीभिर्वृषणापरा वृज प्रान्धं, श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिका ग्रासिताम पंचर्त ताभिदशु, आति भिरश्विनागतम।

इस श्लोक के अनुसार सृष्टि में जो भी अपंग, अंधे, लूले-लंगडे, बहरे है, वे समाज में घृणा के पात्र नहीं, हमें उनके साथ सहृदयतापूर्वक, मानवता का व्यवहार करना चाहिए। किंतु आश्चर्य की बात है, जिसे भारतीय समाज अपनी परंपरा की नींव मानता है, उसी संहिता के इस श्लोक को हमने बड़ी आसानी से भूला दिया। मात्र भारतीय स्मृति के उन वचनों को मात्र बड़े ध्यान से चिरस्मरण में रखा जिसके अनुसार - अंध, खंज, विकलांग, क्षयी या अन्य किसी प्रकार की स्थायी व्याधी युक्त व्यक्ति पैतृक धन का उत्तराधिकारी नहीं बन सकता। जिसके कारण महाभारत का अंध धृतराष्ट्र जेष्ठ होकर भी पहले राजा न बना।

पिछले कुछ वर्षों से राष्ट्रीय मंच से विकलांगों के लिए 'दिव्यांग' जैसे शब्द का प्रयोग किए जाने का आग्रह किया जा रहा है। किंतु विकलांगों के लिए काम कर रहे संगठन 'नेशनल प्लेटफॉर्म फॉर द राइटस ऑफ डिसएबिल्ड' के अनुसार - " शब्द बदलने मात्र से विकलांगों के साथ होने वाले व्यवहार के तौर-तरीके में कोई बदलाव न आएगा। दिव्यांग शब्द के इस्तेमाल से विकलांगों को बहिष्कार और हाशिए पर रहने से बचाया नही जा सकता, इसके विपरित ये केवल सहानुभूति और दान की भावना को ही दर्शाएगा।" विकलांग संगठनों के अनुसार वर्तमान की सबसे बड़ी जरूरत विकलांगो जुडे अपयश, उनके साथ अनेक स्तर पर होने वाला भेदभाव और उन्हें हाशिए पर डालने के मुद्दो पर ध्यान देने की है। ताकि वो देश की राजनीति के साथ आर्थिक, सामाजिक विकास में बेहतर भागीदारी कर सकें। इस दिशा में साहित्य अपने दायित्व को बखुबी निभा रहा है।

Special Issue XX , Vol. II | Peer Reviewed | ISSN : 2319 - 8648
Octomber 2019 | SJIF | Impact Factor : 7.139

विकलांगता कोई नहीं चाहता। पर यह विकलांगता जीवन में अनके कठिनाईयों को उत्पन्न करती है। कल्पित सभ्यता के अंध भक्त बन हम जिन्हें अपंग-पंगु कहकर दुर्लक्षित कर रहे है, वे मनुष्य की ही संताने है। किंतु हमारे विस्मरण ने विकलांगों का जीवन सलीब जैसा बना दिया है। बावजूद इसके विकलांगों में जगता आत्मसम्मान का भाव उन्हें बोझ से मुक्त कर नयी दुनिया की ओर ले जा रहा है। पर उनकी मुक्ती का मार्ग भी सहजगामी नहीं। प्रेम, सम्मान की उम्मीद में अपने मुक्तीपथ की ओर वे अग्रेसर हो रहे है। मुक्ता की निम्न कविता विकलांगों का वर्तमान और भविष्य की ओर उठते उनके कदमों का अनुशीलन करती है।

वह बच्चा अंकुर है / मेरे और तुम्हारे बीजे हुए धान का / तलाशता रहता है वह
मां का आंचल हर आकाश तले / सलाखें रोशनाई के धब्बे / उसके बदन से गुजरे
वह चुप हो गया सलीब जैसा /कुछ स्पर्श, धूप के टुकडे/ उसकी आंखों की उजास बने
उसने दीवारें ढहा दी / मुक्त गगन के नीचे / वह बढता ही जा रहा है
आगे-आगे और भी आगे

विकलांगों का जीवन सर्वसामान्य व्यक्ति की तुलना में काफी मुश्किल होता है। फिर भी जिंदगी से होड लेने का उनका संकल्प, उनके प्राप्य को अन्यों की तुलना में विशेष बना देता है। विकलांगों के समस्या से भरे जीवन को सुकर करने में उनका पुनर्वसन महत्वपूर्ण भागीदारी निभा रहा है। ऐसे में शिक्षा एवं ज्ञान के आधार पर ये दिव्यांग जन अपने लिए नई राह का निर्माण करने में सक्षम सिद्ध हो रहे है। साहित्य उनके इसी विश्वास को बल देता है। क्योंकि वह दिन आएगा, जब विकलांग अपने अधिकारों के प्रति सचेत होकर अपना हक्क प्राप्त करेंगे। इसलिए डॉ. इंद्रबहादुर सिंह कहते है -

ये कसमसाते जन / एक दिन / अपनी जगह /लेकर रहेंगे
हौसला इनका है बुलंद /रूक नहीं सकता / मात्र डेढ गज जमीन पर
कभी भी, नहीं रूकेंगे पैर / रोना, गिडगिडाना और / आंसु बहाना, बीते दिनों की बात
बढ चले इनके कदम / तोडकर पुरानी धारणाएं / नई राह बनाएंगे
रेत के विशाल मरूभूमि में / प्यार के सागर बहाएंगे / नए वन-उपवन लगाएंगे
विकलांगों की वेदना का /सहज में ढूंढ लेंगे हल / एक दिन / ये कसमसाते जन

इस देश में शोषित और शोषक यह वर्ग भेद सदियों से अस्तित्व में रहा है। सामाजिक, धार्मिक क्रांती के कई युग देखने के पश्चात, गुलामी की जंजीरों से आझाद होने के बाद डॉ. बाबासाहब आंबेडकर की बदौलत भारतीय संविधान ने समता, बंधुता जैसे मूल्यों का स्वीकार किया। सदियों से शोषितजन को शोषण के चक्रव्यूह से आझाद करने डॉ. आंबेडकर जी ने तीन मूलमंत्र -शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो को अपनाकर दबे-कुचले समाज को उत्थान का मार्ग दिखाया था। अपनी 'सांत्वना' नामक कविता में डॉ. इंद्रबहादुर सिंह इसी ओर निर्देश करते हुए कहते है -

विकलांग / जिनके पास सिर्फ उनकी विकलांगता है / और कुछ नहीं
XX XX XX
वे / शिक्षा, संगठ्न, संघर्ष और / अपनी जिजीविषा से
समुद्र के पानी पर / चल सकते है।

समाज में विकलांगों की उपलब्धियों को भी सहजता से स्वीकार नहीं किया जाता। उनके साथ होनेवाले भेदभाव, उपेक्षा के चलते वे आज भी समाज के मुख्य प्रवाह से जुड नहीं पाए है, न सम्मानित जीवन जी रहे है। अतः अपने आप को स्वस्थ कहलवाने वाले उस समाज की जिम्मेदारी है कि उनके जीवन को समझे। कवि गिरीश पंकज इसी भाव को अपनी कविता 'निशक्तों को समर्पित' में निम्नशब्दों में प्रकट करते हैं-

आंखें नहीं रही तो क्या गम / अपना हाथ सलामत है / तुम जैसे दिल वालों का भी
जब तक साथ सलामत है / पैर कट गए मगर हौसला /कैसे कट पता बोलो
जब जीवन में जीने का/ यह जज्बात सलामत है / नहीं सुन सके, बोलन पाए
इससे फर्क नहीं पडता / संकेतों के जरिए देखो / सारी बात सलामत है

वर्तमान वैज्ञानिक अविष्कार तथा नए-नए अनुसंधानों ने विकलांगता को मात देने के लिए अनेक संसाधनों को अत्यंत सहजता से उपलब्ध करवाया है। जिसके कारण विकलांगजन अपने आत्मविश्वास और स्वावलंबन के बल पर जीवन को वरदान बना रहे है। उनमें जीवन के प्रति स्वस्थ भाव जग रहा है। शिक्षा और रोजगार के उपलब्ध कई अवसरों ने विकलांगों को समाज का अशक्त नहीं, सशक्त हिस्सा सिद्ध किया है। कई विकलांग प्राप्त अवसर के बलबूते पर अपने गुणों को, कार्यक्षमता को सिद्ध कर रहे है। विकलांगता अगर उनमें कोई कमी रखती है, तो विकलांगजन अपनी कमियों को अपने अतिरिक्त गुणों से पूरित करते है।

पाँव नहीं, लेकिन/ अपने पैरों हम खड़े हुए,
हर मुश्किल आसान बनाकर/इतने बड़े हुए। आगे बढे कदम।

xx xx xx

हाथ नहीं, पर /हम लिख सकते एक नयी गाथा,
जिसके आगे बड़ों-बड़ों का/झुक जाए माथा। बाँहों में वह दम।

xx xx xx

हमें कुरूप/ समझने वालो, क्या यह नहीं पता,
मन की सुन्दरता होती है/ सच्ची सुन्दरता। तोड़ें सभी भरम।
हम हैं किससे कम / बोलो, हम हैं किससे कम!

यह वास्तव है कि प्रगति के समान अवसर यदि विकलांगों को प्राप्त होते है, तो वे किसी से कम नहीं, यह सहजता से सिद्ध कर सकते है। फिर भी समाज की उपेक्षा, ताने सहना, नाना कटु उक्तियों के जहर को पिना सहज संभव नहीं। इसके साथ ही दूसरों के साथ तुलना करने की और दुसरों की देखा-देखी अनुकरण करने की मनुष्य की सहज प्रवृत्ति से विकलांगजन भी दूर नहीं। इसके कारण अपने जीवन को अन्यों से कम समझने की वे भूल कर बैठते है और उसके लिए मायूस होते है, जो उनसे छिन लिया गया। वे अपने जीवन को सिक्के के एक पहलू की तरह ही देखते है और भगवान को दोष देते है। पर इस कमी के बदले ईश्वर ने उन्हें जो दिया है, दिव्यांगजन उसके बारे में नहीं सोचते। तन की शक्ति भले ही न हो, पर मन की शक्ति सर्वोच्च है। इस संदर्भ में सुंदर जी की एक कविता 'विकलांगता तन की, मन की नहीं' काफी कुछ कह जाती है। कवि विकलांगों को आत्मबल, निडरता, दृढता और सच का अवलंब करने के लिए कहते है।

तू चाहे तो कुछ भी कर सकता है।

Special Issue XX , Vol. II | Peer Reviewed | ISSN : 2319 - 8648
Octomber 2019 | SJIF | Impact Factor : 7.139

तू ठान ले तो संसार को बदल सकता है।

तू अपने कर्म से लोगों की सोच बदल सकता है।

विकलांगता को न जीवन का अभिशाप मानो!

क्या है इसकी सच्चाई इसको खूब पहचानो!!

जिस विकलांगता को समाज द्वारा अभिशाप और विकलांगों को अभिशप्त की भूमिका दी गई, उसी पर प्रहार करने का कार्य साहित्य के द्वारा बार-बार होता रहा है। कविता भावों को सहजगम्य बनाती है, एवं अपनी संक्षिप्तता के कारण विशेष प्रभाव छेडती है। काव्य बलाढ्य सिंहासन हिलाने की ताकद रखता है। वर्तमान में हिन्दी कविता जनमानस को आंदोलीत करने का एवं नये विषय प्रवाहों से जोडणे का कार्य कर रही है। इस तरह विकलांगों के मानवी हक्क की प्राप्ति की लडाई में हिंदी काव्य जगत भी अपनी प्रमुख भूमिका बखुबी निभाता नजर आता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची -

निशक्त चेतना -3 - संपा. डॉ. विनयकुमार पाठक, पृ. 92

गांव के लडके - सुमित्रानंदन पंत

गांव के लडके - सुमित्रानंदन पंत

रानी और कानी - सूर्यकांत त्रिपाठी निराला की कविता

ऋग्वेद श्लोक 1/12/218

विकलांग को दिव्यांग ना कहे आलेख - 23 जनवरी 2016 www.bbc.com

विकलांग नहीं - मुक्ता

ये कसमसाते जन -डॉ. इंद्रबहादुर सिंह

सांत्वना- डॉ. इंद्रबहादुर सिंह

निशक्तों को समर्पित -गिरीश पंकज www.girishpankaj1.blogspot.com

विकलांग बच्चों के गीत - सूर्यकुमार पांडेय

विकलांगता तन की मन की नहीं - सुन्दर जी www.anhadkirti.com